आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 6/अंक 1/मार्च 2026

Received: 13/03/2026; Revised: 18/03/2026; Accepted: 24/03/2026; Published: 28/03/2026

भारतीय भाषाविज्ञान चिंतन

डॉ. रणजीत भारती

एसोसिएट प्रोफेसर, भाषाविज्ञान

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

ईमेल- ranjeetb.chi24@gmail.com

डॉ. रणजीत भारती,भारतीय भाषाविज्ञान चिंतन, आखर हिंदी पत्रिका, **खंड 6/अंक 1/मार्च 2026**,(94 - 100)

https://doi.org/10.5281/zenodo.19500203

CC BY NC

This work is licensed under CC BY-NC 4.0

सारांश : भारतीय ज्ञान परंपरा में भाषावैज्ञानिक चिंतन का प्रमाण वेदों के काल से ही मिलता है। सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद में भाषिक अध्ययन संबंधी वर्णन किया गया है। वेदांग अर्थात वेदों के अंग में ज्ञान की छह पद्धतियों- शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, छंद, कल्प और ज्योतिष वर्णन किया गया है। प्रस्तुत शोध आलेख में भारतीय भाषाविज्ञान चिंतन परंपरा की चर्चा पाणिनि से पूर्व, पाणिनि की अष्टाध्यायी और उसके बात बाद तक की गई है। इसके साथ-साथ इसके पाश्चात्य भाषिक चिंतन से भिन्नता की भी चर्चा की गई है। भारतीय भाषा चिंतन तीन महत्वपूर्ण बिंदुओं पर आधारित है- पहला बिंदु भाषा को वाक् (स्पीच) माना गया है अर्थात भारतीयों के अध्ययन का बिंदु उच्चरित भाषा रही है। दूसरा बिंदु भाषा का संबंध हमारे संज्ञानात्मक ज्ञान अर्थात विचारात्मक शक्ति से होता है। तीसरा बिंदु भाषा के द्वारा हम दुनियां की संरचना करते हैं। इन तीन बिंदुओं की चर्चा इस शोध आलेख के माध्यम से की गई है।

(**मुख्य शब्द:** भारतीय ज्ञान परंपरा, भारतीय भाषा चिंतन, वाक्, संज्ञानात्मक, पाश्चात्य भाषा चिंतन)

परिचय : भारत में अध्ययन की परंपरा मौखिक रही है। अतः प्रारम्भ में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक ज्ञान मौखिक परंपरा से संचरित होता था। भारतीय भाषाविज्ञान की आधार भाषा संस्कृत है। भारत में भाषा चिंतन की शुरुआत लगभग 2500 वर्ष वेदों में मिलती है जो स्रुत अर्थात मौखिक परंपरा पर आधारित थी। इसकी छवि हमें वैदिक साहित्य में मिलती है। जैसे; प्रसिद्ध महाकाव्य रामायण में राजा दशरथ का वक्तव्य मौखिक ही था जिसे 'वचन' कहा जाता था। कथन 'रघुकुल रीति सदा चलि आयी प्राण जाए पर वचन ना जायी' मौखिक परंपरा का सटीक उदाहरण है। अर्थात् वचन देना और राजा का नियम तक मौखिक परंपरा से ही चलता था। वेदों के ज्ञान को मूर्त रूप प्रदान करने के ले वेदांग की रचना की गई। अर्थात् वेदांग के अंतर्गत वेदों के लिखित रूप को प्रस्तुत किया गया। वेदांग में भाषा को निम्नलिखित क्रम में व्यवस्थित किया गया-

1. '**शिक्षा**'**-** इसका संबंध भाषा के ध्वनिवैज्ञानिक अध्ययन से है।

2. छंद- इसका संबंध शब्दों एवं रचनाओं की तुकबंदी से हैं।

3. व्याकरण- इसका संबंध व्याकरणिक अध्ययन से है।

4. निरुक्त- इसका संबंध शब्दों के अर्थ संबंधी व्याख्या से है। जबकि पाश्चात्य सभ्यता में भाषा के अध्ययन की शुरुआत लगभग दूसरी सदी से मानी जाती है।

पाणिनि से पूर्व भारतीय भाषा चिंतन : भारतीय परंपरा में शब्द को भाषा का मूल माना गया है। अर्थात् शब्द ही भाषा का आधार तत्व है। इसीलिए शब्द को ब्रह्म कहा गया है। भारत में भाषा के संबंध में चिंतन का स्पष्ट प्रमाण ऋग्वेद में मिलता है। इसके दो सूक्तों में 'वाक्' की उत्पत्ति मनुष्यकृत सिद्ध होती है। तदनुसार अनुच्चरित या प्रकृत भाषा (हवा, पानी, आदि), आदिम भाषा (वस्तुओं, घटनाओं, गुणों का नामकरण) तथा मानव-निर्मित (उच्चरित भाषा)- ये तीनों सोपान भाषा के विकास क्रम को दर्शाते हैं। ऋग्वेद संहिता में वाक् को ब्रह्म की संज्ञा दी गई है। वाक् ही देवताओं की धारिता और प्रेरिका की शक्ति है। वाक् के चार रूप हैं- परा, पश्यंति, मध्यमा और वैखरी

वैखरी- वाक् का पहला रूप वैखरी है। भाषा का वह रूप जिसे हम सुनते या बोलते हैं।
मध्यमा- वाक् का दूसरा रूप मध्यमा है। जिसका संबंध हमारे मस्तिष्क के सोचने से है। जिसे पश्चिमी भाषाविद् एफ. डी. सस्स्यूर ने 'लॉग' कहा।
पश्यंति- वाक् का तीसरा रूप पश्यंति है। यह हृदयगामिनी या आंतरिक ज्योतिर्गमय स्वरूप है।
परा- वाक् का चौथा रूप पूर्णतया सबसे मुक्त है।
पाणिनी पूर्व भारतीय भाषा चिंतन में ध्वनि विज्ञान संबंधी चिंतन महत्वपूर्ण है। इसके प्रणेता **यास्क** थे जिन्होंने भाषिक ध्वनि के अध्ययन को प्रथम विज्ञान या शास्त्र के रूप में स्थापित किया। उन्होंने ध्वनि के सटीक उच्चारण के लिए नियम दिए जिसका अनुप्रयोग वैदिक मंत्रों के सही उच्चारण के लिए किया गया।

दूसरा विज्ञान व्याकरण शास्त्र था जिसके अंतर्गत ध्वनियों का विश्लेषण, वर्णन एवं वर्गीकरण उनके उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न के आधार पर किया गया। इनके द्वारा द्वारा ही प्रातिपदिक जिसे गणपाठ कहा गया, प्रत्यय, उपसर्ग, निपात लिंग आदि की चर्चा की गई। यास्क द्वारा ही सर्वप्रथम शब्द वर्ग की अवधारणा देते हुए शब्दों को चार वर्गों- नाम (संज्ञा), आख्यात (क्रिया), उपसर्ग एवं निपात में वर्गीकृत किया गया था।

पाणिनी अष्ठाध्यायी : यह व्याकरण, जिसका रचनाकाल 350 से 400 ई.पू. के आस-पास है, मानव मेधा के महानतम स्मारकों में से एक है। (ब्लूमफील्ड; लैंग्वेज : 1933) लगभग 350-400 ई. पू. अष्ठाध्यायी नामक महान ग्रंथ की रचना की थी। अष्ठाध्यायी भारतीय भाषावैज्ञानिक अध्ययन की प्राचीनता को दर्शाता है। यह ग्रन्थ आठ अध्यायों में विभक्त होने के कारण इसे अष्ठाध्यायी कहा जाता है। अष्ठाध्यायी के आठ अध्यायों में संज्ञा (सुबन्त), क्रिया (तिङन्त), समास, कारक, सन्धि, कृत् और तद्धित प्रत्यय, स्वर-ध्वनि-विकार और पद का विवेचन किया गया है।

अष्ठाध्यायी में कुल आठ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। अतः कुल 32 पाद हैं। इन अध्यायों और पादों में लगभग चार हजार सूत्र हैं। सभी अध्यायों या पादों में सूत्रों की संख्या समान नहीं है। इसमें वर्णित सामग्री को 'अधिकार' नाम इस प्रकार हैं-

संज्ञाधिकार- इसका संबंध मुख्य संज्ञाओं और परिभाषाओं से है, जिन्हें प्रथम अध्याय में देखा जा सकता है। इसके अंतर्गत आत्मनेपद, परस्मैपद और कारक के प्रकरण की भी चर्चा की गई है।

प्रत्ययाधिकार- इसमें भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रकृतियों (मूल शब्दों) में लगने वाले प्रत्ययों संबंधी नियम हैं। इन्हें तृतीय अध्याय पंचम अध्याय तक देखा जा सकता है। पाणिनि इसे प्रत्यय विधान कहते हैं। इसके अंतर्गत सन् , णिच् , कृत् , ल् , तिङ् , सुप् , स्त्री और तद्धित संबंधी प्रकरण की चर्चा की गई है।

अंगाधिकार- इनका विस्तार षष्ठम अध्याय से सप्तम अध्याय तक है। इसके अंतर्गत द्वित्व, संप्रसारण, संहिता, स्वर एवं अंग संबंधी कार्य की चर्चा की गई है।

पदाधिकार- यह अष्टम अध्याय में है। पाणिनि वाक्य में प्रयुक्त शब्दों को पद के रूप में वर्णित करते हैं और उनके वाक्य में प्रयोग संबंधी कार्यों की चर्चा इस अध्याय में की हैं।

अष्ठाध्यायी की भाषावैज्ञानिक महत्ता: वाक्य को भाषा की मूल इकाई मानना। ध्वनि-उत्पादन-प्रक्रिया का वर्णन एवं ध्वनियों का वर्गीकरण। सुबन्त एवं तिङन्त के रूप में सरल और सटीक पद-विभाग। व्युत्पत्ति - प्रकृति और प्रत्यय के आधार पर शब्दों का विवेचन। भाषा-विषयक अध्ययन में रूप-विज्ञान को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है। यह अध्ययन पद अर्थात् रूप से संबंधित होता है। शब्द और पद में साधारणतः कोई अंतर नहीं किया जाता और 'शब्द' के लिए पद का व्यवहार कर लिया जाता है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से इनमें जो अन्तर है, उसे संस्कृत वैयाकरणों ने सदैव ध्यान में रखा है। अपनी अष्टाध्यायी के(1-4-14) सूत्र

में पाणिनि "सुबन्त और ङिन्त" को पद कहते हैं। संस्कृत में 'शब्द' या मूल रूप को 'प्रकृति' या 'प्रातिपदि' कहा गया है और सम्बन्ध स्थापन के लिए जोड़े जाने वाले तत्व को 'प्रत्यय'।

आधुनिक व्याकरण मुख्यतः संरचना पर ध्यान केंद्रित करते हैं, जबकि पाणिनि के व्याकरण में 'संरचना + अर्थ' दोनों की बात की गई है। अर्थ के स्तर पर भी 'व्याकरणिक अर्थ और लौकिक अर्थ' दोनों का ध्यान रखा गया है। अतः पाणिनि भाषा की समग्रता में बात करते हैं। समास को समर्थपदको सूत्र अर्थात् सम्यक अर्थ वाले शब्दों को जोड़कर पद बनने की प्रक्रिया समास है द्वारा परिभाषित करते हुए 'संरचना और अर्थ दोनों का ध्यान रखा गया है।'

समास के प्रकारों में निम्नलिखित स्थितियाँ पाई जाती हैं-

- पहला पद महत्वपूर्ण
- दूसरा पद महत्वपूर्ण
- कोई पद महत्वपूर्ण नहीं

इस व्याकरण में आवश्यकतानुसार अर्थ के साथ-साथ समाज का भी ध्यान रखा गया है। इसका एक उदाहरण लिया जा सकता है- जैसे; 'आदरेबहुबचनम्' (आदरार्थक प्रयोग बहुवचन में होते हैं। नियमों में पाणिनि का मुख्य बल लौकिक अर्थ पर है, व्याकरणिक अर्थ पर नहीं। जैसे; कर्तुःईप्सिततमम् कर्मः (अर्थात् कर्ता की सबसे अधिक इच्छा कर्म)।

पाणिनि के पश्चात भाषिक चिंतन : पाणिनि के बाद मुख्य रूप से तीन मनिषियों- पतंजलि, भर्तृहरि एवं कुमारिल भट्ट ने भाषा संबंधी विस्तृत चर्चा की। इनका काम संक्षिप्त रूप से इस प्रकार है-

महाभाष्यकार पतंजलि- इनकी सबसे प्रसिद्ध रचना **वाक्यपदीयम्** है जिसमें इन्होंने पद की चर्चा करते हुए कहा है कि- नापि केवला प्रकृतिः प्रयोक्तः नापि केवल व्याः प्रत्ययः। अर्थात वाक्य में न तो केवल 'प्रकृति' का प्रयोग हो सकता है न केवल 'प्रत्यय' का। दोनों के मिलने से जो बनता है वही पद या 'रूप' है। पाणिनि के 'सुप्तिङन्तं पदं' (सुप और तिङ्, जिन के अंत में हो वे पद होते हैं) में भी पद की परिभाषा यही है। प्रत्यय या विभिक्ति को सुप और तिङ् (सुप तिङौ विभक्तिसंज्ञौ स्तः) कहा गया है। उदाहरण के लिए 'पत्रा' शब्द को लें। यह एक प्रातिपदिक मात्रा है। पतंजलि ने महाभाष्य में वाक्य के 5 लक्षण दिए हैं-

1. एक क्रियापद वाक्य है।

2. अव्यय, कारक और विशेषण से युक्त क्रिया-पद वाक्य है।

3. क्रिया-विशेषण-युक्त क्रिया-पद वाक्य है।

4. विशेषण-युक्त क्रिया-पद वाक्य है।

5. क्रियापद-रहित संज्ञा-पद भी वाक्य होता है। जैसे- तर्पणम् (तर्पण करो), पिण्डीम् (ग्रास खाओ)।

मीमांसकों, नैयायिकों और साहित्यशास्त्रियों ने साकांक्ष पद-समूह को 'वाक्य' माना है। आचार्य विश्वनाथ ने 'अकांक्षा, योग्यता और आसत्ति (सन्निधि) से युक्त पद-समूह को वाक्य माना है। आचार्य 'भर्तृहरि' ने अपने

पूर्ववर्ती वैयाकरणों और दार्शनिकों के मतों का संग्रह 'वाक्यपदीय' में करते हुए वाक्य के निम्नलिखित के निम्नलिखित लक्षण बताएं हैं-

• क्रिया-पद को वाक्य कहते हैं।

• क्रिया-युक्त कारकादि के समूह को वाक्य कहते हैं।

• क्रिया एवं कारकादि-समूह में रहनेवाली 'जाति' वाक्य है।

• क्रियादि-समूह-गत एक अखण्ड शब्द (स्फोट) वाक्य है।

• क्रियादि-पदों के क्रम-विशेष को वाक्य कहते हैं।

• क्रियादि के बुद्धिगत समन्वय को वाक्य कहते हैं।

• साकांक्ष प्रथम पद को वाक्य कहते हैं।

• साकांक्ष पृथक्-पृथक् सभी पदों को वाक्य कहते हैं।

आचार्य भर्तृहरि अर्थ के संबंध में गहरा चैंतन किया है। अर्थ को परिभाषित करते हुए वे कहते हैं कि- 'शब्द के द्वारा जिस अर्थ की प्रतीति होती है, उसे ही अर्थ कहते हैं'। अर्थ का अन्य लक्षण नहीं है।' इन्होंने अर्थ की दृष्टि से शब्द की तीन शक्तियों- अविधा, लक्षणा और व्यंजना की चर्चा की है।

अर्थ के क्षेत्र में आचार्य कुमारिल भट्ट ने जो मत दिया उसे **'अभिहितान्वयवाद'** कहा जाता है। इसका अर्थ है- 'अभिहितानां पदार्थानाम् अन्वयः' पद अपने अर्थ को कहते हैं और उनका वाक्य में अन्वय हो जाता है। इस अन्वय से एक विशिष्ट प्रकार का वाक्यार्थ निकलता है। इस वाद को 'पद-वाद' कह सकते हैं। इस बाद में पदों का महत्त्व है और पद-समूह ही वाक्य है। पद के अतिरिक्त वाक्य का कोई महत्त्व नहीं है।

आचार्य कुमारिल भट्ट के शिष्य आचार्य प्रभाकर गुरु ने **अन्विताविधानवाद** का प्रवर्तक किए। ये योग्यता में अपने गुरु कुमारिल से भी अधिक बढ़े हुए थे, अतः अपने गुरु का भी गुरु हो जाने के कारण इन्हें 'गुरु'कहा जाने लगा। इनका मत 'अन्विताविधानवाद' कहा जाता है। इसका अर्थ है- अन्वितानां पदार्थानाम् अभिधानम्' अर्थात् वाक्य में पदों के अर्थ समन्वित रूप से विद्यमान रहते हैं। वाक्य को तोड़ने से पृथक्-पृथक् पदों का अर्थ ज्ञात होता है।

स्फोटवाद- स्फोटवाद भाषा के उच्चारण और अर्थ की प्रक्रिया को व्यक्त करने का मूलभूत सिद्धांत है। इसके संस्थापक भर्तृहरि हैं। स्फोट सिद्धंत के अनुसार विभिन्न मुखर अंगों द्वारा अभिव्यक्ति के विभिन्न स्थानों के संपर्क के साथ उत्पन्न होने वाली मूल ध्वनि है। और ये ध्वनियां आपस में मिलकर अर्थपूर्ण इकाई का निर्माण करती हैं।

स्फोट ध्वनियों के उच्चारण और उनके द्वारा स्फुटित (व्यक्त) अर्थ की श्रृंखला के रूप में कार्य करता है। जब हम किसी ध्वनि को उच्चरित करते हैं तो उस धवनि के उच्चारण के साथ ही उससे जुड़ी अन्य श्रृंखलाओं एवं उससे स्फुटित होने वाले अर्थ की सीमाएं तय होने लगती है। जैसे; यदि हम 'फल' (फ+ल) शब्द कहते हैं तो 'फ' कहने के पश्चात ही उसके बाद आने वाली ध्वनियों की सिमाएं तय हो जाती है और ज्यों ही हम 'फ' के

बाद 'ल' कहते है वैसे ही एक अर्थ हमारे मस्तिष्क में स्फुटित हो जाता है। यह प्रक्रिया एक श्रृंखला में चलती रहती है। यह बाधित तब होता है जब हमें किसी ध्वनि का उच्चारण या उससे बनने वाले शब्द अज्ञात हो। अतः स्फोटवाद भौतिक ध्वनियों का एक स्थायी तत्व है जो प्रकृति में क्षणभंगुर है, और जो स्पीकर की लंबाई, गति और पिच में भिन्न है।

भारतीय एवं पाश्चात्य भाषिक चिंतन : पाश्चात्य देशों में भाषा चिंतन हम ग्रीक सभ्यता के समय से देख सकते हैं। जिसकी शुरुआत लगभग 400 ई. पू. से मानी जाती है। इसके आरंभिक बीज सुकरात, अरस्तु और प्लेटो जैसे दार्शनिकों के वक्तव्य में प्राप्त होते हैं। सुकरात और अरस्तु ने शब्द और अर्थ के बीच संबंधों की व्याख्या की, तो प्लेटो ने इस परंपरा को शब्द वर्गों के निर्धारण तक आगे बढ़ाया। इसके पश्चात ग्रीक भाषा के व्याकरण पर काम किया गया, जिसमें **थ्रैक्स** और **दिसकोलस** के काम देखे जा सकते हैं। ग्रीक सभ्यता के बाद रोमन सभ्यता का आगमन हुआ। रोमन भाषा चिंतकों ने भी ग्रीक परंपरा का ही अनुकरण किया और कोई विशेष काम नहीं किया जिसे अलग कहा जा सके। इसके बाद का समय डार्क एज कहलाता है। क्योंकि रोमन परंपरा के बाद से 18वीं सदी के आरंभ तक भाषा के क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं हुआ। पाश्चात्य दर्शन में भाषा में अर्थ संबंधी चिंतन से हुई थी जो अर्थ के दार्शनिकता पर केंद्रित थी। जबकि भारतीय परंपरा की शुरुआत ध्वनि एवं भाषा के स्रुत परंपरा से हुई। प्रो. कपिल कपूर भारतीय एवं पाश्चात्य भाषिक चिंतन को निम्नलिखित तीन बिंदुओं से पृथक करते हैं-

I. भारतीय भाषा चिंतन में भाषा को वाक् (स्पीच) के रूप में माना जाता है जबकि पाश्चात्य में भाषा के लिखित रूप की मान्यता रही है।

II.भारतीय भाषा चिंतन में भाषा को एक संज्ञानात्मक व्यवस्था माना गया है। अर्थात् हमारे विचार शक्ति भाषा में होते हैं। जबकि पाश्चात्य भाषा भाषा को प्राथमिक रूप से संप्रेषण से जोड़ा गया है।

III. भारतीय भाषा चिंतन में के अनुसार हम भाषा द्वारा हम संसार की संरचना करते हैं जबकि पाश्चात्य के अनुसार भाषा द्वारा हम वास्तविकता को प्रस्तुत करते हैं।

निष्कर्ष : इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में भाषा संबंधी चिंतन आज से लगभग 5000 वर्ष पूर्व वेदों के काल से ही मिलता है। भारत के अनेक मनिषियों ने भाषा के मौखिक परंपरा में ही रचनाओं को संचरित किया। जिसकी पड़ताल हम साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से भी कर सकते हैं। भारत में ध्वनि और शब्द का अध्ययन विस्तार से मिलता है। जबकि पाश्चात्य में भाषा का अध्ययन लगभग दूसरी ई. पूर्व से मिलता है जो अर्थ केंद्रित था। इस चर्चा के माध्यम से हम देखते हैं कि भारतीय चिंतन परंपरा में भाषा के अध्ययन और उसके मौखिक अभिव्यक्ति को ज्यादा महत्व दिया गया है जबकि पाश्चात्य में भाषा के लिखित रूप को ज्यादा महत्व दिया गया है। अतः पाश्चात्य अध्ययन में हमें भाषा लेखन के लिए आई. पी. ए. चार्ट मिलता है जबकि भारतीय भाषाओं के लिए इसकी आवश्ययकता पर बल नहीं दिया गया है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची:

• Emilie Aussant, Linguistics in Premodern India, Oxford Research Encyclopedia of Linguistics, 2018.

• Kapoor, Kapil, Dimensions of Panini Grammar: The Indian Grammatical System, D.K. Print World Ltd., 2005

• रमानाथ शर्मा, 'पाणिनी और उनकी अष्टाध्यायी' भाषाशास्त्र के सूत्रधार, 2002

• द्विवेदी, कपिलदेव, अर्थविज्ञान और व्याकरण दर्शन, हिंदुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद, 1951.

• नागेशभट्ट, स्फोटवाद, संपादन: वी कृष्णमाचार्य, अड्यार लाइब्रेरी एण्ड रिसर्च सेंटर, मद्रास,1977.

• भर्तृहरि, वाक्यपदीय, संपादन (हिंदी), शिवशंकर अवस्थी, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 2006.

Websites:

https://lgandlt.blogspot.com/2018/03/blog-post_19.html?m=0

https://epgp.inflibnet.ac.in/epgpdata/uploads/epgp_content/S000022LS/P001299/M031900/ET/1537854388Lings_P14_M1_eText.pdf

****